International Journal of Applied Research 2021; 7(3): 439-442

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(3): 439-442
www.allresearchjournal.com
Received: 24-01-2021
Accepted: 26-02-2021

डॉ० कौशल्या देवी
संस्कृत विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ० कौशल्या देवी
संस्कृत विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

वाल्मीकि रामायण में सीता का त्याग और धरती में समा जाना

डॉ० कौशल्या देवी

सारांश
प्रस्तुत शोधपत्र में सबसे पहले वाल्मीकि रामायण, काल, तथा नायक–नायिका का परिचय देकर इसकी नायिका के त्याग का वर्णन किया जा रहा है। इसकी नायिका सीता अयोनिजा होने पर भी सांसारिक कार्य में प्रवृत्त रहती है। अपना पतिव्रता धर्म निभाने के लिए राज्य के सुख–साधनों का त्याग करके पति के साथ वनवास गमन करती है। वह स्वामी के साथ कुशा की साथरी पर शयन करते हुए कन्द–मूल खाकर निर्वाह करती है। कई बार तो केवल पानी पीकर ही तृप्त हो जाती थी। वनवास काल में कदम–कदम पर अनेक कष्टों को सहती है। एक दिन पंचवटी निवास के समय लंकापति रावण द्वारा अपहृत की जाती है और अनेक राक्षसियों के बीच लंका की अशोकवनिका में रखी जाती है। जहां अनेक प्रलोभन देने पर भी वह अपने नियमों से डगमगाती नहीं है और वह वहां श्रीराम के आने की प्रतीक्षा करती है। जब श्रीराम लंकापति रावण को मारकर विजयी होते हैं तब वह सीता का दर्शन स्नानादि कराके ही करते है। उसे उस समय अपनी शुद्धता प्रमाणित करने को अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है। अयोध्या जाने पर नगरवासियों के कहने पर पुनः राजय छोड़कर वन में रहना पड़ता है परन्तु लव–कुश के बड़ा होने पर पुनः अपनी चरित्रता का प्रमाण देना पड़ता है जिसमें सती साध्वी प्रमाणित होने पर वह धरती में समा जाती है।

कूटशब्द – त्याग और धरती में समा जाना

प्रस्तावना
प्रस्तुत शोध पत्र में मैं सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण का संक्षिप्त परिचय, काल तथा महत्त्व का वर्णन करूंगी। उसके पश्चात महाकाव्यों के नायक–नायिका का परिचय देकर नायिका के त्याग का स्टीक अध्ययन करूंगी।

संसार में अनेक रामायणों का लेखन किया गया है। जिनका मूलाधार वाल्मीकि रामायण ही है। जो महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित होने के कारण ''वाल्मीकि रामायण'' कहलाई जाती है। लौकिक साहित्य का प्रथम उपजीव्य ग्रन्थ होने के कारण इसे 'आदिकाव्य' भी कहा जाता है। जिसका रचनाकाल 500 ई० पूर्व माना गया है।

एक बार महर्षि वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर स्नान करने गए। जहां एक व्याध ने काम से मोहित हुए क्रौञ्च युगल पक्षी में से एक को मार दिया और दूसरा उसके वियोग में करूणामयी चित्कार करता है। जिसे देखकर वाल्मीकि का हृदय पसीज जाता है और उनके मुख से एक छन्दोमयी श्लोक निकल पड़ता है। [1] ब्रह्माजी वाल्मीकि को इसी वाणी में तत्कालीन राजा श्रीराम जी का जीवन चरित लिखने को कहते है जिसे वाल्मीकि ने 24000 श्लोकों में लिखकर सात काण्डों–बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध तथा उत्तरकाण्ड में विभक्त किया था।

इस महाकाव्य के नायक श्रीराम तथा नायिका सीता है। जिसमें लंकापति रावण द्वारा सीता का अपहरण करके पुनः प्राप्त करने पर श्रीराम सीता का त्याग करते हैं।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार रावण द्वारा सीता का अपहरण करने के बाद दोनों में घमासान युद्ध होता है। जिसमें श्रीराम के वज्र के समान दुर्धर्ष और काल के समान अटल बाण ने रावण का वध कर दिया। [1] यह देखकर हुनमान श्रीराम को प्रणाम कर बोले–भगवन्! जिनके लिए आपने युद्ध आदि कर्म किए हैं उन शोकसंतप्ता सीता को दर्शन दे दो। [2] हनुमान के वचन सुनकर धर्मात्माओं में श्रेष्ठ श्रीराम अचानक ध्यानस्थ होकर विभीषण से बोले–विदेहनन्दिनी सीता को मस्तक से स्नान कराकर दिव्य अङ्गराग और दिव्य आभूषणों से विभूषित करके शीघ्र ही मेरे पास लाओ। [3] राम के ऐसा कहते ही विभीषण बड़ी उतावली से अन्तपुर में जाकर सीता से बोला– आप शीघ्र ही स्नान करके दिव्य अङ्गराग और दिव्य आभूषण पहनकर यान में बैठ जाइए। आपके स्वामी आपको देखना चाहते हैं। [4] यह सुनकर सीता बोली– मैं बिना स्नान किए हुए ही अपने पतिदेव के दर्शन करना चाहती हूँ। परन्तु विभीषण बोला– आपको अपने पति की आज्ञा माननी चाहिए। [5]

इसके बाद सीता ने स्नानकर सुन्दर श्रृंगार और दिव्यावस्त्र धारण किए और श्रीराम सुन्दर श्रृंगार और दिव्यावस्त्र धारण किए और श्रीराम के पास गई। [6] जिसे देखकर श्रीराम को एक साथ हर्ष, रोष और दुःख प्राप्त हुआ। [7] वह विभीषण से बोले– विपत्तिकाल, शारीरिक या मानसिक पीड़ा, युद्ध, यज्ञ, विवाह तथा स्वयंवर में स्त्री का दूसरों के सामने आना दोष नहीं होता। [8] इसलिए पालकी छोड़कर जानकी को पैदल ही सबके सामने लाया जाए। [9] यह सुनकर विभीषण ने सीता को विनम्र भाव से श्रीराम के सामने लाया। उस समय सीता ने बड़े विस्मय, हर्ष और स्नेह के साथ श्रीराम को दर्शन कर अपने मन की पीड़ा दूर की। [10] इसके बाद श्रीराम बोले– भद्रे! समराङ्गण में शत्रु को पराजित कर मैंने तुम्हें उसके चंगुल से छुड़ा लिया है। मेरा परिश्रम सफल हो गया है क्योंकि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके भार–मुक्त हो गया हूँ। [11] परन्तु हे सीते! रावण तुम्हारे ऊपर कुदृष्टि डालकर तुम्हें गोद में उठाकर ले गया था। वह तुम्हारे दिव्य सौन्दर्य को देखकर तुमसे दूर नहीं रह सका होगा। इसलिए मेरा तुम्हारे ऊपर सन्देह करना जायज है। [12] मेरे सामने होते हुए तुम मुझे वैसे ही अप्रिय लग रही हो जैसे आंख के रोग से ग्रसित प्राणी को दीपक की ज्योति प्रिय नहीं लगती। [13] इसलिए अपने कुल को महान मानता हुआ मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि दसो दिशाओं में तुम जहाँ चाहो चली जाओ। अब मुझे तुमसे कोई प्रयोजन नहीं है। [14] जनसमुदाय में अपने स्वामी के मुख से ऐसी बातें सुनकर सीता शर्म से लज्जित होकर आँखों से अविरल अश्रुधारा बहाती हुई बोली [15] हे वीर पुरुष! मैं सदाचार की शपथ खाकर कहती हूँ कि जैसा आप समझ रहे हो मैं वैसी नहीं हूँ (सन्देह के योग्य नहीं हूँ।) [16] नीच श्रेणी की स्त्रियों को देखकर सबको एक समान समझना उचित नहीं है। शरीर पराधीन है जिसे रावण द्वारा स्पर्श करना मेरा दुर्भाग्य है। मेरे अधीन तो मेरा हृदय है जो हमेशा आपके साथ लगा हुआ है। [17] हे सदाचार के मर्म को जानने वाले देवता! मैं राजा जनक की यज्ञ भूमि से प्रकट हुई साधारण मानव जाति से विलक्षण दिव्य हूँ। चारित्रिक बलयुता होते हुए मेरा आचार–विचार अलौकिक एवं दिव्य है। [18] पाणिग्रहण के समय मेरे मन में देखे हुए भक्ति और शील स्वभाव को पीछे ढकेलकर आपने ओछे व्यक्ति के समान रोष का अनुसरण किया है। [19] अब इस मिथ्या कलंक से कलंकित करके मेरा जीवित रहना उचित नहीं है। इसलिए हे सुमित्रानन्दन! मेरे लिए चिता तैयार करो। [20] तत्पश्चात् सीता ने श्रीराम की परिक्रमा करके देवताओं तथा ब्राह्मणों को हाथ जोड़कर अग्निदेव से कहा– यदि मेरा मन एक क्षण के लिए भी रघुनाथ से दूर न हुआ हो तो अग्निदेव चारों ओर से मेरी रक्षा करें। यह कहकर वह अग्नि में समा गई। [21] तब ब्रह्माजी के कहने पर अग्निदेव पिता की भान्ति सीता को गोद में उठाकर चिता से बाहर निकलकर श्रीराम से बोले– आपकी पत्नी सीता निष्पाप और दोषरहित है। [22] इस उत्तम आचारवाली सुभलक्षणा सती ने मन, वाणी, बुद्धि और नेत्रों से किसी दूसरे पुरूष का आश्रय नहीं लिया है। इसने सदा आपकी आराधना की है। [23] इसने रावण द्वारा अनेकों प्रलोभन देने पर भी उसके बारे में नहीं सोचा। [24] यह सुन श्रीराम प्रसन्न होकर बोले– दीर्घकाल तक रावण के अन्तपुर में रहने के कारण लोगों को विश्वास दिलाने के लिए यह अग्नि परीक्षा जरूरी थी। [25] सीता मुझमें उसी प्रकार अभिन्न है। जैसे सूर्यदेव में प्रभा। [26] यह सुनकर महादेव श्रीराम से बोले–हे कमलनयन! अब दुःखी भरत को धीरज बंधाकर यशस्विनी कौशल्या, कैकेयी तथा लक्ष्मणजननी सुमित्रा से मिलकर आत्मीयजनों को आनन्दित करो। इक्ष्वांकुकुल में अपना वंश स्थापित कर अश्वमेघ यज्ञ अनुष्ठान कर परम धाम जाओ। [27] उसके बाद वे सब पुष्पकविमान से अयोध्या गए। [28] उन्हें आया देखकर कैकेयी पुत्र भरत खुशी से क्षणभर को मूर्च्छित हो गए। [28] इसके बाद श्रीराम का राज्यभिषेक कराया गया। वह समस्त राज्य पर शासन करते हुए [29] सीता से रमण करते रहते थे। [30] गर्भाधारण के शुभ चिन्ह देखकर श्रीराम सीता की इच्छाएं पूछते हैं। [31] जिसमें वह फल–मूल खाकर रहने वाले मुनियों के तपोवन को देखना चाहती है। [32] उसी समय हास्य विनोद करने वाले लोगों के बीच बैठे हुए लोग नगरवासी की बाते श्रीराम के प्रति कहते हैं कि बलपूर्वक हरण की गई सीता से राम घृणा क्यों नहीं करते हैं? अब जैसा राजा वैसी प्रजा का आदेश पालन करते हुए हमें भी स्त्रियों की बातें सहनी पड़ेगी। [32] यह सुनकर श्रीराम बड़ी बुद्धिमता से विचारकर द्वारपाल से अपने भाइयों को बुलाकर कहा– संसार में अपबीति का पात्र बनने वाला मनुष्य अधम लोक में गिर जाता है। [33] इसलिए मैं लोकनिन्दा के भय से अपने प्राणों और तुम सबको त्याग सकता हूँ तो सीता को त्याग्ना मेरे लिए कोई बड़ी बात नहीं है। [34] इसलिए हे सुमित्राकुमार! कल सुबह उसे राज्य की सीमा से बाहर आश्रम के निकट निर्जन वन में छोड़ आओ। [35] यह जानकर सीता को बड़ा दुःख हुआ और मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गई। [36] होश आने पर अपना कोई रक्षक न देखकर वह जोर जोर से रोने लगती है। [37] जिसे देखकर वाल्मीकि आश्रम के मुनि शिष्य ने यह बात वाल्मीकि को बताई। [38] यह सुनकर धर्मज्ञ महर्षि वाल्मीकि ने मधुर वाणी में कहा– हे पतिव्रते! तुम राजा दशरथ की पुत्रवधू राजा जनक की पुत्री श्रीराम की पटरानी हो। तुम्हारा स्वागत है। [39] इसके बाद मुनि का अनुसरण करती हुई सीता हाथ जोड़कर उनके साथ चली गई। [40] जहां पर सीता ने कालान्तर में दो पुत्रों को जन्म दिया। [41] और श्रीराम ने अश्वमेध यज्ञ कराने के लिए ब्राह्मणों में अग्रगण्य सर्वश्रेष्ठ वसिष्ठ, बामदेव, जाबालि और काश्यप द्विजों को बुलाकर पूरी सावधानी के साथ शुभ लक्षणों से सम्पन्न घोड़ा छोड़ने को कहा। [42] यज्ञ आरम्भ होते ही महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्यों के साथ वहाँ पधारे। [43] जहाँ दोनों शिष्यों ने चारों ओर घूमकर रामायण का गान किया। [44] जिससे श्रीराम को लव–कुश के अपने पुत्र होने का पता चलता है और वे वाल्मीकि जी को दूत के द्वारा सन्देश भेजते हैं कि यदि सीता का चरित्र शुद्ध है उसमें किसी प्रकार का पाप नहीं है तो वे आपकी अनुमति से यहाँ आकर अपनी शुद्धता प्रमाणित करें। [45] इसके बाद सीता हाथ जोड़कर मुँह नीचा करके कहती है– मैं रघुनाथ के सिवाय किसी दूसरे पुरुष का स्पर्श तो दूर मन से भी चिन्तन नहीं करती हूँ। यदि यह सत्य है तो धरती माँ मुझे अपनी गोद में स्थान दे दे। [46] सीता की ऐसी शपथ लेते ही भूतल से एक अदभुत, सुन्दर व दिव्य सिंहासन प्रकट हुआ। [47] जिसमें अधिष्ठात्री देवी पृथ्वी विराजमान थी। उसने सीता को दोनों भुजाओं से उठाकर गोद में बिठाया और रसातल में प्रवेश किया। [48]

निष्कर्ष

इस प्रकार आदिकाव्य वाल्मीकि रामायण में रावण द्वारा आपहृत की गई सीता श्रीरामजी को सुग्रीव तथा हुनमान आदि वानर सेनाओं की सहायता से प्राप्त होती है। परन्तु लंका में रहने के कारण उसे अपनी पवित्रता सिद्ध करने के लिए कठिन अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है। जिसमें खरा उतरने पर श्रीराम उसे अपना लेते हैं। फिर सीता के चरित्र को लेकर समाज में लोकापवाद फैलता है जिसमें लोग अराजकता फैलाने की आंशका व्यक्त करते हैं। यह सुनते ही श्रीराम लोकापवाद के भय से उसे (सीता को) पुनः त्याग देते हैं और इस बार सीता अपने सतीत्व की परीक्षा देते हुई कहती है कि यदि मैंने रघुनाथ के सिवाय किसी दूसरे पुरुष का स्पर्श तो दूर मन से भी चिन्तन किया हो तो धरती माँ मुझे अपने में समा ले। उसी समय पृथ्वी से एक दिव्य सिंहासन प्रकट होता है और सीता को लेकर वापिस धरती के अन्दर प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार सती सीता धरती में समा जाती है जहाँ से अयोनिजा प्रकट हुई थी।

सन्दर्भ

1. अथ वज्र इव दुर्धषो वज्रिबाहुविसर्जितः कृतान्त इव चावार्यो न्यपदत रावणोरसि। वाल्मीकि रामा० युद्ध काण्ड, 108.17

2. यन्निमत्तोऽयमा रम्भः कर्मणां यः फलोदयः, तां देवी शोकसंतप्ता दुष्टुमर्हसि मैथिलीम्। वही, यु०का० 1.114.2
3. एवमुक्तो हनुमता रामो धर्मभृतां वरः आगच्छत् सहसा ध्यानम्। उवाच विभिषणम्–दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरण भूषिताम्। इह सीता शिरः स्नानतामुपस्थापय मा चिरम्।। वही, यु०का० 114.5–7
4. एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो विभीषण मूर्धिन बद्धाञ्जलिः। विनितो–दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरण भूषिंता। यानमारोह भंद्र ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति।। वही, यु०का०, 114.8–10
5. अस्न्नात्वा द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसेश्वर। तस्यातद् वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः।। यथाऽऽह रामो भर्ता ते तत् तथा कर्तुमर्हसि।। वही, यु०का०, 114.11–12
6. ततः सीतां शिरः सन्नातां संयुक्तां प्रतिकर्मण। महार्हाभरणोपेतां महार्हाम्बर धारिणीम्।। आरोप्यं शिबिकां दीप्तां जहाराध्यानमास्तिथतम् रामेण उवाच प्राप्तां सीता।। वही, यु०का०, 114.14–16
7. तामागतामुपश्रुत्य–रोषं हर्षं च दैन्य च राघवं प्राप्त शत्रुहा।। वही, यु०का०, 114.17
8. व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे। न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दूष्यते स्त्रियाः।। वही, यु०का०, 114.28
9. विसृज्य शिबिकां तस्मात् पद्भयामेवापसर्पतु। वही, यु०का०, 114.30
10. ततः विभीषणः रामस्योपानयत् सीतां संनिकर्ष विनीतवत्। उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्य सौम्यतरानना।। वही, यु०का०, 114. 31,35
11. एषासि निर्जिता भद्रे शत्रु जित्वा रणाजिरे। अद्य मे पौरूषं दृष्टमद्य मे सफल श्रमः। अद्य तीर्णप्रतिज्ञोऽहं प्रभावाम्यद्य चात्मनः।। वही, यु०का०, 115. 2,4
12. सीते! रावणाङ्गपरिक्लिष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा। नहि त्वां रावणो दृष्ट्या दिव्यरूपां मनोश्माम्। मर्षयेत चिरं सीते स्वगृहे पर्यवस्थिताम्।। वही, यु०का०, 115. 20–34
13. प्राप्तचरित्रसन्देहा मम प्रतिमुखे स्थित। दीपा नेत्रातुरस्थेव प्रतिकूलासि में दृढ़ा।। वही, यु०का०, 115.17
14. तद् गच्छ त्वानुजानेऽद्य यथेष्टं जनकात्मजे। एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया।। वही, यु०का०, 115.18
15. सा तदाश्रुतपूर्वं हि जने महति मैथिली। श्रुत्वा भतुर्वचो घोरं लज्जयावनता भवत्।। वही, यु०का०, 116. 2
16. न तथा स्मि महाबाहो यथा मामवगच्छसि।। वही, यु०का०, 116–5
17. पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं त्वं परिशङ्क्से यदहं गात्रसंस्पर्श गतस्मि विवशा प्रभो। कामकारो न मे तत्रदैवं तत्रापराध्यति। ममाधीनं तु यत् तन्ये हृदयंत्वयि वर्तते।। वही, वही, यु०का०, 116.7–9
18. अपदेशो में जनकान्तोत्पत्तिर्वसुधातलात्। मम वृत्तं च वृत्तज्ञ बहु ते न पुरस्कृतम्। पाणिवाल्ये मम निपीडितः मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम्।। वही, यु०का०, 116त्र15–16
19. त्वया तु नरर्शादूल रोषमेव अनुवर्तता। लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्।। वही, यु०का०, 116. 14
20. उवाच लक्ष्मणं सीता दीनं ध्यानपरायणम्। चिता मे कुरू। मिथ्यापवादोपहता नाहं जीवितमुत्सहे।। वही, यु०का०, 116. 17–18
21. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 116.23–25, 29
22. एतच्छुत्वा शुभं वाक्यं पितामहसमीरितम्। अङ्केनादाय वैदेहीमुत्पपात विभावसुः।। अब्रवीत् तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः। एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते। वही, यु०का०, 118.15
23. नैव वाचा न मनसा नैव बुद्धया न चक्षुषा। सुवृत्ता वृत्तशौटीर्यं न त्वामत्यचरच्छुभा।। वही, यु०का०, 118.6
24. प्रलोभ्यमाना विविधं तर्ज्यमाना च मैथिली नाचिन्तयत्।। वही, यु०का०, 118.9
25. ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वैवं वदतां वरः। अवश्य चापि लोकेषु सीता पावनमर्हति। दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा।। वही, यु०का०, 118.11,13
26. अनन्या हि मया सीता भास्करास्य प्रभा यथा।। वही, यु०का०, 118.18
27. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, 119.4–6
28. एवमुक्तो हनुमता भरतः कैकेयीसुतः। पपात सहसा हृष्टो हर्षान्मोहमुपागमत्।। वही, यु०का०, 125. 40
29. सः राज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः राघवः शशास पुश्या मुद्रा। वही, यु०का०, 128.10–11
30. एवं रामो मुद्रा युक्तः सीतां सुरसुतोपमाम्। रमयामास वैदेहीमहन्यहनि देववत।। वही, उतरकाण्ड, 42. 24–25
31. दृष्ट्वा तु राघवः पत्नीं कल्याणेन समन्विताम्। प्रहर्षमतुलंलेमे। मिमिच्छति वरारोहे कामः किं क्रियातां तव।। वही, उत्तरकाण्ड, 42.29–31
32. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 43.12, 17–19
33. भद्रं अकीर्तिर्यस्य गीयेत लोके भूतस्य कस्यचित्। अपवादभयाद् भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम्।। वही, उत्तरकाण्ड, 45.14–15
34. अप्यहं जीवितं जह्यं युष्मान् वा पुरूषर्षभाः। अपवादभयाद् भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम्।। वही, उत्तरकाण्ड, 45.14–15
35. श्वस्तं प्रभाते सौमित्रे आरूह्य सीतामारोप्य विषयान्ते गङ्गायास्तु परे पारे महात्मनः आश्रमो विजने देशे विसृज्य शीघ्रमागच्छ।। वही, उत्तरकाण्ड, 45.16–18
36. लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा दारूणं जनकात्मजा। पर विषाद्मागम्य वैदेही निपपात् च।। वही, उत्तरकाण्ड, 48.1
37. सा दुःखभारावनता यशस्विनी यशोधरा नाथमपश्यति सती। रूरोद सा बर्हिणनादिते वने महास्वनं दुःखपरायणा सती।। वही, उत्तरकाण्ड, 48.26
38. सीता तु रूदन्ती दृष्ट्वा ते तत्र मुनिदारकाः। प्रादवन् यत्र भगवानास्ते वाल्मीकिरूग्रधी निवेदया।। वही, उत्तरकाण्ड, 49.1–2
39. तां सीतां शोक भारार्तं वाल्मीकिमुर्निपुङगवः। उवाचमधुरां वाणीं ह्लादयन्निव तेजसा। स्नुषा दशरथस्य त्वं रामस्य महिषी प्रिया। जनकस्य सुता राज्ञः स्वागतं ते पतिव्रते।। वही, उत्तरकाण्ड, 49.10–11
40. तं प्रयान्तं मुनिं सीता प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽन्वगात्।। वही, उत्तरकाण्ड, 49.18
41. तामेव रात्रिं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम्।। वही, उत्तरकाण्ड, 66.1
42. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 91.2–3

43. वर्तमाने तथाभूते यज्ञे च परमादभुते।
सशिष्य आजगामाशु वाल्मीकि र्भगवानृषिः।। वही, उत्तरकाण्ड, 93.1
44. तौ यथोक्तमृषिणा पूर्वं सर्वं तत्रोपगायताम्।। वही, उत्तरकाण्ड, 94.1
45. दूताशुद्धसमाचारानाहूयात्मनीषया मद वचो ब्रूत गच्छध्वमितो भगवतोऽन्तिके। यदि शुद्धसमाचारा यदि वा वीतकल्माषा।
करोत्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम्।। वही, उत्तरकाण्ड, 95.2–3
46. सर्वान् समागतान् दृष्ट्वा सीता प्राञ्जलिवाक्यमधोदृष्टि वाङ्मुखी अब्रवीत्–यथाऽहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
47. तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।। वही, उत्तरकाण्ड, 97. 13–14
48. तस्मिन्नस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम्।
स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेश्यत्।।
तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्ति रसातलम्।। वही, उत्तरकाण्ड, 97.19–20